ध्यान, नव-संन्यास, परंपरा और आधुनिकता

रहस्यदर्शी कबीर हों कि भगवान बुद्ध, कि ओशो, वे परंपराओं के पोषक नहीं होते, लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि वे परंपराओं का अंध-विरोध करते हैं। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बुद्ध हुए और उनके समय पर धर्म के नाम पर चली आ रही, व्यर्थ हो गयी परंपराओं का उन्होंने खंडन किया; यह उनके आंदोलन का एक पक्ष था। इसका दूसरा पक्ष था कि उन्होंने पृथ्वी पर सबसे बड़े संघ की स्थापना की। एक ओर उन्होंने लोगों को आत्मा-परमात्मा की अंधश्रद्धा से मुक्त किया तो दूसरी ओर उन्होंने लोगों को बुद्धों की, संघ की, धम्म की शरण में जाने की देशना भी दी; अर्थात् अंधश्रद्धा से मुक्त किया लेकिन उनके श्रद्धा-भाव को नष्ट नहीं किया। उन्होंने मन के विश्वासों के सब तरह के झाड़-झंखाड़ साफ किये ताकि लोगों के हृदय की भावभूमि पर श्रद्धा के सुमन ठीक से खिल सकें।

आज के युग में, आज के बुद्ध ने, ओशो ने भी अंधविश्वासों तथा सड़ी-गली परंपराओं पर कड़ा प्रहार किया; लेकिन साथ ही परंपराओं से चली आ रही सार्थक साधना-पद्धतियों का भरपूर समर्थन भी किया; उनको आज के युग के अनुरूप अभिव्यक्ति दी। हजारों साल से इस देश में संन्यास की परंपरा है, ओशो ने उसे आंदोलित किया और नव-संन्यास के रूप में पुनर्जीवित किया।

मंदिरों में पूजा-पाठ के नाम पर चल रहे सब तरह के पाखंडों और ढकोसलों पर प्रहार किया और साथ ही मंदिर, तीर्थ, तिलक-टीके, इनका आंतरिक विज्ञान भी अति आधुनिक भाषा में समझा दिया। ओम्, अल्लाह, नमोकार तथा ओम् मणि पद्मे हुम जैसे महामंत्रों के अनूठे रहस्यों का उद्घाटन किया और ये महामंत्र आज फिर सार्थक प्रतीत होने लगे। लेकिन ओशो ने हमें सजग और सावधान भी किया कि हम इन मंत्रों का यंत्रवत् उपयोग न करें।

हम बचपन से मंदिरों में संकीर्तन करते रहे हैं, उसकी यांत्रिकता का ओशो ने खंडन किया, लेकिन वही कीर्तन आज ओशो ध्यान शिविरों में तथा ध्यान-केन्द्रों में एक ध्यान की भांति होता है; साधक नृत्य करते हुए उसकी मस्ती में डूब जाते हैं। लेकिन कुछ लोग हैं कि वे बालीवुड संगीत की ऊटपटांग धुनों पर नाचने को आधुनिक कहेंगे, लेकिन कीर्तन की धुनों पर नाचने वालों को परंपरागत कहकर उनकी निंदा करने का मजा लेंगे। अहंकार के खेल निराले हैं। वह फूहड़ संगीत पर नाचने को भी अपना अहंकार बना लेता है और आध्यात्मिक संगीत पर नाचने के साथ अपने को दिव्य समझने लगता है, पवित्र अहांकार से ग्रस्त हो जाता है। ध्यान हो कि संन्यास हो, पूजा हो कि प्रार्थना उसका मूल उद्देश्य था अहंकार की क्षुद्रता से मुक्त होकर अपने को विराट को समर्पित कर देना। महागीता प्रवचनमाला के दौरान एक मित्र ने ओशो से पूछा : आपने कहा कि किसी भी बंधन में मत पड़ो। तो क्या संन्यास भी एक बंधन नहीं है? और क्या विधि, उपाय व प्रक्रिया भी बंधन नहीं है?

ओशो का उत्तर है : ''मामला ऐसा है कि संन्यास लेने की कामना मन में है, हिम्मत नहीं है। अष्टावक्र को सुनकर तुमने सोचा, यह अच्छा हुआ कि संन्यास में बंधन है, कोई पड़ने की जरूरत नहीं! और दूसरे बंधन छोड़ोगे कि सिर्फ संन्यास का ही बंधन छोड़ोगे? और संन्यासी तुम अभी हो ही नहीं, तो उसे छोड़ने का कोई उपाय नहीं है, जो तुम्हारे पास ही नहीं है। और बंधन क्या-क्या छोड़ोगे? पत्नी छोड़ोगे? घर छोड़ोगे? धन छोड़ोगे? पद छोड़ोगे? मन छोड़ोगे? कर्ता छोड़ोगे? अहंकार-भाव छोड़ोगे? और क्या-क्या छोड़ोगे जो तुम्हारे पास है? निश्चित जो तुम्हारे पास है वही तुम छोड़ सकते हो। यह तो संन्यासियों को पूछने दो, जो संन्यासी हो गए हैं। तुम तो अभी संन्यासी हुए नहीं। यह तो संन्यासी पूछे कि क्या अब छोड़ दें संन्यास, तो समझ में आता है। उसके पास संन्यास है; तुम्हारे पास है ही नहीं। जो तुम्हारे पास नहीं, उसे तुम छोड़ोगे कैसे? जो तुम्हारे पास है, वही पूछो। गृहस्थी छोड़ दें, यह पूछो।

''अष्टावक्र की पूरी बात सुनकर तुमको इतना ही समझ में आया कि संन्यास बंधन है! और कोई चीज बंधन है?

''संन्यास का पूछते हो तो संन्यास तो सिर्फ मेरे साथ होने की एक भावभंगिमा है। यह बंधन नहीं है। तुम मुझसे बंध नहीं रहे हो। मैं तुम्हें कोई अनुशासन नहीं दे रहा हूं, कोई मर्यादा नहीं दे रहा हूं। मैं तुमसे कह नहीं रहा—कब उठो; क्या खाओ, क्या पीयो; क्या करो, क्या न करो। मैं तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि साक्षी रहो। मैं तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि मेरा हाथ मौजूद है, मेरे हाथ में हाथ गहो; शायद दो कदम मेरे साथ चल लो, तो मेरी बीमारी तुम्हें भी लग जाए। संक्रामक है यह बीमारी। बुद्ध के साथ थोड़ी देर चल लो, तो तुम उनके रंग में थोड़े रंग जाओगे; एकदम बच नहीं सकते। थोड़ी गंध उनकी तुममें से भी आने लगेगी। बगीचे से ही अगर गुजर जाओ, तो तुम्हारे कपड़ों में भी फूलों की गंध आ जाती है—फूल छुए भी नहीं, तो भी!

एक संबुद्ध रहस्यदर्शी का निमंत्रण ध्यान और संन्यास के लिए एक सुअवसर है अपने अहंकार से मुक्त होने का। उसके प्रति समर्पण विराट के प्रति समर्पण है, क्योंकि वह स्वयं विराट को समर्पित हो गया है, वह विराट का एक झरोखा है।

—स्वामी चैतन्य कीर्ति